Chapter-4

चतुर्थ अध्याय

दार्शनिक विचार

ब्रह्म, जीव, जगत, माया, माया का स्वरूप,
माया से निजात, मोक्ष आदि

3

दार्शनिक तत्व निरूपण

विगत अध्यायों में हमने गुजरात में साखी के उद्भव और विकास का निरूपण तथा साखिकारों के जीवन एवं कृतित्व की अपेक्षित आलोचना प्रस्तुत की है । अब हम गुजरात के साखिकारों की साखियों के विभिन्न पहलुओं एवं शिल्प विधान के अनेकानेक उपकरणों की समीक्षा करेंगे । प्रस्तुत अध्याय में हिन्दी गुजराती साखियों की दार्शनिक विचारधारा की साम्यक् छानबीन करने का प्रयास किया गया है ।

"दर्शन" शब्द की व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है - दृश्यते अनेन इति दर्शनम् जिसके द्वारा देखा जाय । कौन पदार्थ देखा जाय ? वस्तु का सत्यभूत तात्त्विक स्वरूप ।[1] तात्त्विक स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए संतों ने अनेक प्रश्नों के समाधान करने का प्रयत्न किया है जिससे वस्तु का मूलभूत सत्य स्पष्ट हो जाय । इन्होंने अपनी वाणियों में दर्शन के मूलतत्व को स्पष्ट करके उसका सरलीकरण करने का प्रयास किया है ।

हमारे देश में दर्शन तथा धर्म का, तत्वज्ञान तथा जीवन का, गहरा संबंध है । जैसा विचार वैसा आचार । बिना धार्मिक आचार के द्वारा कार्यान्वित हुए दर्शन की स्थिति निष्फल और बिना दार्शनिक विचार के द्वारा परिपुष्ट हुए धर्म की सत्ता अप्रतिष्ठित है ।[2]

दार्शनिक तर्क के आधार पर ब्रम्ह का प्रतिपादन करते हैं जबकि संत अपनी अनुभूति के आधार पर सरलता और ऋजुता से ब्रम्ह का संवेदनपूर्ण वर्णन और निरूपण करते हैं । दार्शनिक विभिन्न न्याय और वस्तु के पूर्व पक्ष और उत्तर

।1। भारतीय दर्शन - बलदेव उपाध्याय ।पृ0 5।

।2। भारतीय दर्शन - बलदेव उपाध्याय ।पृ0 13।

पक्ष की योजना बनाकर ब्रम्ह का तार्किक और भौतिक रूप प्रतिपादन करने का मनोयोगपूर्ण परिश्रम करते हैं । क्योंकि संत दार्शनिक होने के बजाय धार्मिक और आध्यात्मिक विशेष होते हैं । अतः वे तर्क, न्याय, दलिलबाजी से नहीं किन्तु अपनी श्रृद्धा, आस्था और श्रद्धा के बल पर ब्रम्ह का निरूपण-वर्णन करते हैं ।

उपनिषदों में ब्रम्ह के दो स्वरूपों का वर्णन विशद रूप से किया है - सविशेष अथवा सगुण रूप, निर्विशेष अथवा निगुण रूप । इन दोनों भावों में भेद निर्देश करने के लिए निर्गुण को "पर ब्रम्ह" कहा गया है और सगुण को "अपर ब्रम्ह" तथा कहीं कहीं "शब्द ब्रम्ह" भी कहा गया है ।[1]

ब्रम्ह समग्र इन्द्रिय वृत्तियों के द्वारा विषयों की उपलब्धि में समर्थ होता है । अथवा वह स्वयं समस्त इन्द्रियों से हीन है । वह सब प्रकार के देहादिक संबंधों से रहित है, परन्तु सबको धारण करता है ।[2]

गीता भगवान के दो प्रकार के भावों की सत्ता बतलाती है । भगवान के दो भाव हैं - ꠰1꠰ परभाव ꠰2꠰ अपर भाव । ईश्वर एक ही अंश से योगमाया से युक्त रहते हैं तथा उसी अंश से जगत में अभिव्यक्त होते हैं । वह एक अंश से जगत को व्याप्त कर स्थित होते हैं इसका नाम है अपर भाव या विश्वानुग रूप । परन्तु भगवान केवल जगत्मात्र ही नहीं है, प्रत्युत वह इसे अतिक्रमण करने वाले भी है । यह उनका वास्तव रूप है । इस अनुत्तम अव्यय रूप का नाम है - विश्वातीग रूप । गीता की यह कल्पनाठीक पुरुषसूक्त के अनुरूप है । पुरूष का यह जगत केवल पाद मात्र है उसके अमृत तीन पद आकाश में स्थित हैं । ब्रम्ह के उभयभाव भी इसी प्रकार है । भगवान विश्व के घट-घट में व्याप्त है ।[3]

꠰1꠰ भारतीय दर्शन - डॉ0 बलदेव उपाध्याय ꠰पृ0 74꠰

꠰2꠰ भारतीय दर्शन - डॉ0 बलदेव उपाध्याय ꠰पृ0 97꠰

꠰3꠰ भारतीय दर्शन - डॉ0 बलदेव उपाध्याय ꠰पृ0 97꠰

ब्रम्ह शक्ति की विविधता के साथ उसके स्वाभाविक ज्ञान, बल और क्रिया की सृष्टि आदि रूपों में परिणति भी उपनिषदों में वर्णित है ।

मध्यकालीन धर्मसाधना मुख्यत: दो रूपों में विकसित हुई - ॥1॥ निर्गुण और ॥2॥ सगुण । निर्गुण धारा का उदय उस काल के अंध-विश्वासी रूढ़िवाद और धार्मिक सम्प्रदायों के मतभेद की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ । इस धारा के कवि किसी पंथ सम्प्रदाय को महत्व नहीं देते थे । ये लोग अलौकिक प्रतिभासम्पन्न होते थे । अत: सैकड़ों साधु संत इनके अनुयायी हो जाते थे । ये गुरू के स्वर्गवासी हो जाने पर उनकी पूजा करते थे तथा उनके नाम से पंथ चला देते थे । इन संतों ने अपने समय की समस्त प्रचलित धार्मिक एवं दार्शनिक विचार धाराओं, साधनाओं और साधु सम्प्रदायों के सारभूत तत्वों को आत्मसात करके तथा उन्हें अपनी प्रतिभा और प्रयोग के द्वारा एक नया रूप दे दिया जो इनकी अपनी कृति है ।

मध्यकाल में गुजरात में संत मत अथवा निर्गुणोपासना का जो प्रसार एवं प्रभाव परिलक्षित होता है उसका मूल अति प्राचीन काल में वैदिक साहित्य में दृष्टिगोचर होता है । ज्ञान मार्ग मूलत: निर्गुणोपासना का मूलाधार है जिसमें अखा आदि कवि आते हैं । निर्गुणोपासना के क्षेत्र में ईश्वर की अद्वैत उपासना तथा एकेश्वरवाद की विशिष्टता होती है । उस परम तत्व को विभिन्न देवी देवताओं के रूप में न मानकर एक ही ब्रम्ह के रूप में देखना निर्गुणोपासकों का प्रमुख लक्षण है ।

निर्गुण धारा के कवियों ने एक अन्य बड़ा कार्य यह किया कि प्रचलित जटिल विचारधाराओं, साधनाओं और साम्प्रदायिक आचारों का सहजीकरण किया । यही उनकी विशेषता है । निर्गुणधारा के कवि अधिकांशत: बुद्धिवादी साधक थे । स्वभावत: क्रान्तदर्शी सत्यान्वेषी, अक्खड़ फक्खड़ और घुमक्खड़ होने के कारण इनकी रचनाओं में विभिन्न प्रदेश की भाषा और धर्म संबंधी विशेषतायें स्पष्ट परिलक्षित होती हैं ।

56

गुजरात के भक्त कवि तत्वत: दार्शनिक नहीं थे । उनकी साखियाँ दार्शनिक विचारों से ओत प्रोत नहीं हैं । अपितु ईश्वर भक्ति और सामाजिक हितार्थ लिखी गई हैं । परन्तु भक्ति की पराकाष्ठा में पहुँचने के कारण इनकी साखियों में दर्शन का सम्मिश्रण कहीं कहीं सूक्ष्म रूप से हो गया है ।

ये संत मूलत: किसी विशेष सम्प्रदाय से संबंधित न होने के कारण इनकी साखियों में किसी एक विशेष सम्प्रदाय की कट्टरता परिलक्षित नहीं होती । संत भक्त जीवन काल में अनेक अन्य स्वानुभवी संतों के सम्पर्क में आये । सम्भव है अन्य श्रेष्ठ संतों के पावन सत्संग से ही उनको उत्तम भक्ति एवं उच्च कोटि का दार्शनिक ज्ञान उपलब्ध हुआ है । ब्रम्ह, जीव, जगत, माया, मोक्ष से संबंधित उनके विचार उनकी साखियों में यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं । [illegible] संतों में ब्रम्ह जिज्ञासा प्रबल रूप में प्रस्तुत थी । उन्होंने अपनी साखियों में ब्रम्ह विषयक विचारों को अधिक महत्त्व दिया । इनकी साखियों में ब्रम्ह के सगुण और निर्गुण दोनों रूपों की प्रधानता देखी जाती है, वह निराकार भी है और साकार भी है । इनकी सगुण और निर्गुण भावना औपनिषदिक प्रभाव से मुखरित है ।

गुजरात के कुछ साखीकारों ने ब्रम्ह के प्रगट और अप्रगट दोनों रूपों का वर्णन अपनी साखियों में यत्र-तत्र किया है । उनके अनुसार जो अप्रगट है जिसका कोई प्रगट रूप नहीं है वही ब्रम्ह है । केवल अनुभव के आधार पर ही उसका वर्णन किया जा सकता है । ब्रम्ह की स्थिति और उसके अदृश्य रूप का आभास केवल अनुभव को मानकर दयाराम कहते हैं कि -

"ब्रम्ह प्रगट दरसै नहीं, अस अनुभव बिन केह ।"[1]

दयाराम के ब्रम्ह निर्गुण है परन्तु सगुण रूप में भी हैं । संतों ने जिसे परात्पर

कहा उसी को दयाराम ने कृष्ण के रूप में वर्णन किया है । यह गुजरात के प्रमुख भक्त कवि दयाराम की विशेषता है । अपने "साखी-दुहा" ग्रंथ में दयाराम ने वेदान्त परम्परा के अनुसार ब्रम्ह का आकाश के रूप में वर्णन किया है । ब्रम्ह आकाश की तरह व्यापक है, "खं ब्रम्ह" भी वही है और वही ब्रम्ह "ब्रज के श्याम" है । अतः एक ही साथ कवि ने निर्गुण और सगुण दोनों रूपों को स्पष्ट किया है।

"आकाश ब्रम्ह को नाम है खं ब्रम्ह यह नाम,
वह जु महदाकाश तें, व्यापक ब्रम्ह ज्युं श्याम"

दयाराम ने "सर्वब्रम्ह सब में रहे" कह इसकी सर्वव्यापी रूप को दर्शाया है । कवि के ब्रम्ह की सर्वव्यापकता इतनी अधिक है कि वह इस जगत के प्रत्येक अंश में विधमान रहता है । जिसकी व्यापकता की तुलना कवि ने वायु के साथ की है और वही ब्रम्ह ब्रज के भूप है अर्थात् श्रीकृष्ण सर्वत्र व्याप्त हैं जो कि परात्पर ब्रम्ह है -

"जस वायु सर्वत्र है, सदाकाल इक रूप,
तस परात्पर ब्रम्ह है, जो हैं ब्रज के भूप ।[2] 27

प्रीतम ने भी अपनी साखियों में ब्रम्ह को निर्गुण तथा सगुण दोनों रूपों में सम्बोधित किया है । उनकी मान्यता यह है कि जो ज्ञानी है उनके लिए ब्रम्ह का मनन करने के लिए एक साकार रूप की आवश्यकता नहीं होती परन्तु अज्ञानी को इस मायाजनित संसार में, भटकते हुए मन को स्थिर रखने के लिए, ब्रम्ह के एक साकार रूप की आवश्यकता होती है जिसकी प्राप्ति उन्हें राम-

----

§1§ रसथाल - §पृ0 232§

कृष्ण जैसे अवतारी पुरुषों का ध्यान धरने से हो जाती है । इस प्रकार कुछ भक्त सगुण रूप की आराधना और कुछ निर्गुण रूप की आराधना करके इस भव सागर को पार कर गये है । अतः ब्रम्ह की आराधना में सगुण-निर्गुण का भेद कोई महत्व नहीं रखता यह तो भक्त की ब्रम्ह भक्ति और ज्ञान की पराकाष्ठा पर निर्भर है । उपनिषदों में ऋषियों ने ज्ञान मार्ग को अधिक महत्व दिया है । ज्ञान के द्वारा ब्रम्ह की उपासना का महत्व देकर उन्होंने ब्राम्हण ग्रन्थों में उपेक्षित ज्ञान-मार्ग की पुनः प्रतिष्ठा की है । परन्तु ज्ञान के साथ ईश्वर की उपासना के महत्व को स्वीकृत करते हुए उन्होंने इस बात का भी स्पष्ट अनुभव किया कि कोरा ज्ञान मार्ग ब्रम्ह के साक्षात्कार के लिए पर्याप्त नहीं । बिना भक्ति के ज्ञान मार्गी उपासना अपूर्ण है इस बात को वे पूर्णतः जानते थे । इसलिए उन्होंने उपनिषदों में स्थान स्थान पर भक्ति की भी प्रतिष्ठा की है ।[1] इस तथ्य की पुष्टि प्रीतम ने अपनी साखियों में की है -

"निर्गुण ब्रम्ह सगुण भये, राम कृष्ण अवतार,
कहे प्रीतम गुण गायके तर गये अनेक अपार ।"[2] 27

महाकवि तुलसी की भी ब्रम्ह विषयक अवधारणा प्रीतम से मिलती जुलती है । उन्होंने "अगुणहीं सगुण ही कछु नहीं भेदा" कह कर इस तथ्य को स्पष्ट किया है । गुजरात के संतों ने भी इस भेद को निरर्थक बताकर ब्रम्ह के व्यक्त और अव्यक्त दोनों रूपों का निरूपण किया है । यहाँ के साखीकार गीता के सगुण तथा निर्गुण ब्रम्ह के दोनों रूपों से परिचित होने के कारण, ब्रम्ह का सत और असत् रूप का भी ज्ञान था । उनके ब्रम्ह इन दोनों से परे भी थे । भगवान जगत का प्रभव {उत्पत्ति} तथा प्रलय {लयास्थान} है । जिस प्रकार डोरेमें मणियों

{1} राधा वल्लभ सम्प्रदाय - सिद्धान्त और साहित्य
- विजयेन्द्र स्नातक {पृ0 7}

{2} प्रीतम वाणी {पृ0 43}

का समूह पिरोया रहता है उसी प्रकार भगवान में समस्त जगत ओत-प्रोत अनुस्यत गुथा हुआ है । उसके हाथ, पैर चारों ओर हैं, आँख, सिर, कान तथा मुँह चारों तरफ है, वह पूरे विश्व का आवरण कर स्थिर है - इस प्रकार गीता में ब्रम्ह सगुण तथा निर्गुण दोनों प्रकार का है ।[1]

वस्ता में ब्रम्ह का सगुण और निर्गुण दोनों रूपों में वर्णन किया है । न तो वह चन्द्र के समान है ,न धरती ,न सूर्य के समान । वह स्वभू एवं पर्याप्त है । नामरूप गुणातीत होने के कारण सब गुणों से परे हैं । वह स्वयं ही गुणों का अधिष्ठाता और नियामक होते हुए उनसे अभिन्न है । वह निराकार और निरंजन है ।

सगुण से निर्गुण तणों दीसे नहीं भास,
चन्द्र सुरज दीसे नहीं, नहीं धरती आकाश ।[2]

गुजरात के संतों ने अपनी साखियों में सगुण निर्गुण की एकता को स्पष्ट करते हुए कहा है कि वह एक ही सत्ता है परन्तु दृष्टिकोण की भिन्नता के कारण वह दोनों नामों से पुकारा जाता है । ब्रम्ह संसार की सृष्टि, स्थिति तथा लय करता है अतः वह ईश्वर है परन्तु निरपेक्ष भाव से देखने पर वही ब्रम्ह है । अतः गुजरात के कवियों ने इन दोनों में भेद न मानकर निर्गुण और सगुण दोनों की एकता को स्पष्ट किया है ।

प्रीतम ने अपने ब्रम्ह विषयक विचारों को साखियों में यों दर्शाया हैं । प्रीतम ने उसे शुद्ध - चैतन्य कहा है -

----

(1) भारतीय दर्शन - डॉ0 बलदेव उपाध्याय - (पृ0 97)
(2) वस्ता नी साखियों - - हलि "ब्रम्ह अंग"

"कहे प्रीतम व्यापी रहैया, चैतन्य शुद्ध स्वरूप[1]

चैतन्य, साक्षी, प्रमाता, प्रमाण और प्रमेती कहकर उसको पंच नामों से पुकारा है -

"शुद्ध चैतन्य साक्षी प्रमाता, प्रमाण प्रमेती जेह,
प्रीतम पंचनाम ब्रम्ह के, अनुभव ओलखे तेह ।"[2]

सृष्टि-कारक ब्रम्ह जगत के सृष्टा होने पर भी जगत के दोष गुणों से मुक्त रहता है । वह अकर्ता होते हुए भी कर्ता है । वेद में निरूपित ब्रम्ह भाव से प्रेरित होकर प्रीतम लिखते हैं कि ब्रम्ह अनादि और अटल है, अकल और अछेद है इसकी महिमा चारों वेद में लिखी हैं -

"ब्रम्ह अनादि अटल है, अकल अरूप अछेद,
कहें प्रीतम नित्य कहत है, महिमा चारे वेद ।"[3] 10

प्रीतम के अनुसार जिस जगत को हम देखतें हैं वह ब्रम्ह की क्रीड़ा मात्र है । सृष्टि परिमाण ही ब्रम्ह के अस्तित्व और उसकी विराट सत्ता का एक सामान्य आभास मात्र है । जिस प्रकार सिंधु में अनेक लहरें उठती है उसी प्रकार ब्रम्ह से सकल जगत की सृष्टि होती है ।

"ज्युं सिन्धु में होत है, लहरी अनंत अपार,
कहें प्रीतम यु ब्रम्ह में, उपजे सब संसार ।"[4] 6

----

(1) प्रीतम वाणी - (पृ. 90)
(2) प्रीतम वाणी - (पृ. 91)
(3) प्रीतम वाणी - (पृ० 91)
(4) प्रीतम वाणी - (पृ० 91)

ब्रम्ह के अजर अमर रूप का चित्रण करते हुए प्रीतम गुजराती साखी में लिखते हैं कि जिस प्रकार मिट्टी के बर्तन की स्थिति मिट्टी से भिन्न नहीं होती उसी प्रकार ब्रम्ह से जीव की उत्पत्ति होने के कारण उनमें और ब्रम्ह में कोई भिन्नता नहीं होती । क्योंकि "भांड" के नष्ट होने पर वह मिट्टी में स्वत: विलीन हो जाता है । उसी प्रकार जीव की उत्पत्ति तो ब्रम्ह से होती ही है और उसका नाश होने पर वह पुन: ब्रम्ह में लीन हो जाता है । अत: उत्पत्ति और विलय का आधार एक मात्र ब्रम्ह ही है ।

"भांड भूमिसो, भिन्न नहीं, आद्य अंत मध्य एक
कहे प्रीतम यूं ब्रम्ह में, उपजे खपे अनेक ।" 12

"चैतन्य सागर एकरस, कवक दंड मणिदीप, 16

कहकर जीव और ब्रम्ह की अभेद स्थिति को स्पष्ट किया है । जिस प्रकार स्वर्ण (कनक) और उससे बने पदार्थों (मणिदीप दंड) में भिन्नता नहीं होती दोनों को मूलत: एक ही माना गया है उसी प्रकार जीव और ब्रम्ह भी एक रूप हैं । अलंकाराभिव्यक्ति को भ्रमरूप कहा है इस प्रकार द्वैतभाव का निषेध किया है ।

ब्रम्ह की सर्वव्यापकता और लिंगातीत रूप की व्याख्या करते हुए गुजराती में वे कहते हैं ईश्वर के पास ऊँच नीच का भेदभाव नहीं होता उसके लिए पुरूष और नपुंसक दोनों समान होते हैं । अखा के शब्दों में कहा जाय तो "अणलिंगी" है । अर्थात् पुरूष-लिंग, स्त्रीलिंग आदि भेदों से परे हैं, उसकी व्यापकता अनन्त है । इसी भाव को प्रीतम ने भी व्यक्त किया है -

"ईश्वर कु ऊँच नीच नहीं, पुरूष नपुंसक नार,
कहे प्रीतम व्यापी रह्यो, सबघट बोलन हार ।" 25

ब्रम्ह में सर्ग और विसर्ग के बिलास को दर्शाते हुए कवि स्पष्ट करते हैं कि जिस प्रकार वृक्ष की शाखाएँ छोटी बड़ी होती है उसी प्रकार ब्रम्ह भी कभी सर्ग में और कभी विसर्ग में विलास करता रहता है, कार्यरत रहता है । परन्तु वास्तव में ब्रम्ह एक ही है -

"तरूवर एक शाखा बहु, नीच ऊँच लघु दीर्घ,
कहे प्रीतम युं ब्रम्ह में, भयो सर्ग विसर्ग ।" 21

राम-कबीर सम्प्रदाय के प्रधान संत और संस्थापन जीवणदास ने अपनी साखियों में ब्रम्ह की, राम के रूप में व्याख्या की है । उसके अनुसार राम ही ब्रम्ह है और उनको छोड़कर किसी दूसरे के शरण में जाने वाले की वही दशा होती है जैसे रूई के मंदिर में बैठकर द्वार पर आग लगाना अर्थात् जानबूझकर अपनी क्षती करना -

सीतपति तज जीवणा, रहयो ब्रम्ह तु लाग ।
रूई मंदिर में पैठकर, द्वारे लगाई आग ।।[1]

जीवर्ण के राम अर्थात् सीतापति का स्वरूप आकाश से भी विशाल है अत: जो उनका ध्यान करना छोड़कर आकाश रूपी ब्रम्ह का ध्यान करता है वह विशालता को छोड़कर लघुता की ओर आकृष्ट होता है अर्थात् जो राम का मनन छोड़कर किसी अन्य का भजन करता है इसका अर्थ है प्रगट ब्रम्ह को छोड़कर अप्रगट की आराधना करना -

सीतापति तज जीवणा ।। ध्यान धरे आकाश ।।
प्रगट गोद को छोड़ के ।। करे गर्भ की आश ।।[2]

---

(1) उदाधर्म पंचरत्न माला - (पृ0 161)
(2) उदाधर्म पंचरत्न माला - (पृ0 162)

ब्रम्हबिन्दु उपनिषद में कहा गया है कि एक आत्मा अनेक प्राणियों में उसी प्रकार विराजती है जैसे असंख्य जल-तरंगों पर एक चन्दा के अनेक रूप दिखाई देते हैं ।[1] वेदान्त दर्शन में इसी भाव को "प्रतिबिम्ब भाव" कहते हैं । इसी भाव से प्रेरित होकर जीवणदास अपने राम को श्रृष्टि के प्रत्येक स्थल में देखते हैं । प्रत्येक घट में जीवणजी के राम स्थिर है । वह इस प्रकार व्यापक रूप में, विस्तार के साथ विराजमान है कि उसके प्रतिबिम्ब की तरह इस धरातल पर उसका अस्तित्व परिलक्षित् होता है । निम्नलिखित साखियाँ कवि के इस भाव को पुष्ट करती हैं -

"घट-घट मा हरि लेखवे । आपे हो रह्या ब्रम्ह"
ज्यों जल में प्रतिबिम्ब है । त्यों घट-घट व्यापक राम ।"

"घट-घट तो हरि जाणीये" कहकर जीवणजी ने इसी भाव को स्पष्ट किया है । कवि ने जगत में वैषम्य की भावना को नष्ट करने के लिए एक व्यापक दृष्टिकोण अपनाकर साम्य की स्थापना की है । चिन्तन की चरम स्थिति में साधना की एकाग्रता के लिए द्वैत-जनित भेद का नाश हो जाता है ।

भक्त कवि निरांत ने अपनी गुजराती साखियों में ब्रम्ह के सर्वव्यापी रूप का वर्णन इसी द्वैतभाव को नष्ट करने के लिए किया है ।

"आद्य अंत मध्य एक छे विश्वतणो विश्राम ।।"[2] 42

इन्होंने राम को ही ब्रम्ह माना है और इसी राम के कारण ही इस सृष्टि का आरम्भ और अन्त सम्भव है । अतः निरांत अपने राम से इस प्रकार प्रभावित हैं कि वह इनके दोनों रूपों, निर्गुण और सगुण का स्मरण और मनन करते रहना ही जीवन का प्रधान ध्येय समझते हैं ।

---

(1) एक एवहि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः ।
एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत् ।। ब्रम्हबिन्दुउपनिषद (पृ0 92)

(2) ह0लि0 निरांत काव्य

गुजरात के संतों ने संसार की प्रत्यक्ष सत्ता की आलोचना व्यावहारिक धरातल पर की है । अनस्तित्व में अस्तित्व की उपलब्धि की व्याख्या अनेक प्रकार से की है । वस्ता ने भक्ति भाव से प्रेरित होकर अनेक रचनायें की हैं । गुजराती में लिखी साखियों में उन्होंने ब्रम्ह के अनेक रूपों का वर्णन किया है । उनके अनुसार ब्रम्ह का स्वरूप वर्णन करना असम्भव है । वह अवस्थारहित है । वह जन्म, जरा और मृत्यु से परे है अर्थात् ब्रम्ह आज अव्यक्त है और पूर्ण है -

बाल बुद्ध जोबन नहीं शब्दातीत छे जहीं ।।[1] 6

वस्ता ब्रम्ह उपासना में इतने लीन हो गये कि विश्व में उन्हें ब्रम्ह का विलास सर्वत्र दृष्टिगोचर होने लगा । इन्होंने संसार की इस प्रत्यक्ष सत्ता की आलोचना व्यावहारिक धरातल पर की है परन्तु सत्य और आनन्द से युक्त ब्रम्ह की अखंड रूपता और अनुभूति इनकी साखियों में मिलती है -

"तुमही माता, तुम ही पिता, तुम कुल्लु कुटुम्ब भाई,
तुम बिना कोई ना सगा, तुम ही अटल सगाई ।।[2] 7

संत तेजानंद ने ब्रम्ह का वर्णन एक विशिष्ट रूप में किया है । उनके अनुसार जो सोता है वह जीव है अर्थात् अज्ञानी है, जो जागता है वह ज्ञानी है जो इस जाग्रत और सुप्त अवस्था से परे है वही ब्रम्ह है । तेजा अपने पूर्ण भक्ति -भाव से उसी ब्रम्ह की आराधना करते हैं । इस प्रकार कवि ने ब्रम्ह का एक विराट-विस्तृत रूप अंकित किया है -

सोवत सोही जीवरा, जागत ब्रम्ह रूप मान
जागत सोवत ते परे, "तेजा" सो ही बखान ।।[3] 29

----

(1) ह०लि० (आत्मज्ञान अंग)

(2) ह०लि० (अंग बिनती को)

(3) संत तेजानंद स्वामी - (पृ० 607)

हमारे जीवनधारण के आधार को "ब्रम्ह" कहकर संबोधित किया है। जीवन जिस दम के आधार पर चालित हो रहा है उसका चालनहार अर्थात् प्रत्येक दम का मूल राम को माना है। अत: राम की आराधना पूजन आदि से विरत रहने पर उस दम से जीवन का संबंध टूट जाता है। इसलिए तेजानंद कहते हैं इस दम को कायम रखने के लिए राम का जो परमब्रम्ह रूप है उसकी स्तुति अनिवार्य है।

दम का बसेरा चल रहा, दम दम राम समाय
"तेजा" राम रूठ जायेंगे, दम ही दम उड़ जाय ।।[1] ।।

जगत को ब्रम्ह का स्वरूप दर्शाते हुए तेजानंद ब्रम्ह के विश्व व्यापी रूप की व्याख्या करते हैं। अर्थात् "ब्रम्ह सत्यम् जगत् अपि सत्यम्" की अनुभूति को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि इस सत्य रूप ब्रम्ह को समझना केवल ज्ञानी लोगों के द्वारा ही सम्भव है क्योंकि उनको बुझे सो ही जग बुझे" अत: जग को समझने से पहले उनकी सत्ता को समझना आवश्यक है। जो व्यक्ति "श्याना" अर्थात् ज्ञानी है वही इसे बूझकर इस माया रूपी संसार से निजात पाने का प्रयास करेगा।

यारो जहां से कहा बुझो, सोही बुझ पिव मोर
उनको बुझे सो ही जग बुझे, "तेजा"बखानत तोर ।।[2] 36

"श्याना तुमी सजाग हो ग्रहो शब्द ततसार,[3] 37

कहकर तेजानंद ने ज्ञानी व्यक्तियों को ब्रम्ह के प्रति जिज्ञासु होकर धर्म ग्रंथों के सार तत्वों को ग्रहण करके एकनिष्ठ भाव से उसकी आराधना में रत रहना चाहिए।

ǀ1ǀ . तेजानंद स्वामी - (पृ. 606).
ǀ2ǀ . " " (पृ. 608)
ǀ3ǀ . " " (P. 608).

महात्मा देवा साहब ने ब्रम्ह को गुण-दोषों से मुक्त बताया है। कवि के अनुसार वह स्वयं ही गुणों का अधिष्ठाता और नियामक है। वह सकल विकारों से वर्जित है और प्रकृति के सकल गुणों से परे है। "प्रकृतिगुणनि के पार" कहकर अपनी साखियों में इस तथ्य की पुष्टि की है।

देवा साहब ने अनस्तित्व में अस्तित्व की उपलब्धि की व्याख्या अनेक प्रकार से की है। उन्होंने कहा है कि ब्रम्ह असंगी एवं अनंत है। असंगी अर्थात् किसी अन्य के संग-साथरहित। अर्थात् अद्वितीय। जिस प्रकार आकाश अनंत है उसी प्रकार ब्रम्ह भी अनंत है। इसका कोई अन्त नहीं है। पुनः पुनः इसका रूप इस ब्रम्हाण्ड में परिलक्षित होता रहता है। अव्यक्त होने के कारण इसको व्यक्त नहीं किया जा सकता है -

आप असंगी अनन्त है, जाको अन्त न कोई ।।
ज्यों आकाश अनन्त है। व्यक्ता व्यक्त न होई ।।[1] 3

ब्रम्ह के अजर-अमर रूप का वर्णन करते हुए देवासाहब कहते हैं कि इसका विनाश नहीं होता अतः यहअविनाशी, इसका अन्त पाना भी असम्भव है।[2] सभी प्रपंचजनित वैषम्य अखंड अद्वैतस्वरूप परमेश्वर में साम्य स्थापित करते हैं।

देवा साहब के अनुसार ब्रम्ह "अजर अमर अछेद है। अखंड ब्रम्ह अनंत है" इस भावना का स्पष्ट प्रमाण इनकी साखियाँ है। इन्होंने ब्रम्ह को "ब्रम्ह सो

---

(1) राम सागर - (पृ0 120)

(2) अजर अमर अछेद है। अखंड ब्रम्ह अनंद ।।
भेदाभेद न संभवे ।। मक्ष बुद्धि क्यों पर संत ।। 5 (पृ0 120)

तुरीयातीत" कहकर इसका तुरीय रूप में वर्णन किया है । कहीं कहीं सगुण ब्रम्ह की स्पष्ट छबि भी परिलक्षित होती है ।[1]

"इह समस्त ब्रम्ह है । आदि मध्य अवसान ।।" कहकर देवासाहब ने ब्रम्ह को सृजन के उपर्युक्त पक्ष के अन्तर्गत व्यावहारिक जगत् का अस्तित्व माना है । ब्रम्ह को आदि और अन्त का मूल स्रोत माना है ।

इसी भाव को निरांत ने भी अपनी गुजराती साखी में स्पष्ट किया है -

"आद्य अंत मध्य एक छे
विश्व तणो विश्राम ।।[2]

रवी साहब ने भी ब्रम्ह के इसी रूप को गुजराती साखी में भी स्पष्ट किया है -

"आद्य अंत मध्य रमी रह्या
पोते ते पूरण ब्रम्ह ।।[3] ।2

साखिकारों ने हिन्दी तथा गुजराती दोनों भाषाओं में ब्रम्ह की अखण्डता परिपूर्णता और आदि अंत रहितता का वर्णन किया है ।

----

‡1‡ "ब्रम्ह से तुरियातीत । चेतन रूप अभामहें ।।"

‡2‡ निरांत काव्य - ‡पृ0 1‡

‡3‡ रवीभाण सम्प्रदाय - ‡पृ0 25‡

ब्रम्ह के क्षर और अक्षर दोनों रूपों से परे भाव को स्पष्ट करते हुए दयाराम अपनी साखियों में लिखते हैं कि इस गुणातीत ब्रम्ह अर्थात् सात्विक, राजसिक और तमसिक वृत्तियों से रहित सर्वातीत ब्रम्ह की प्राप्ति केवल ध्यान, श्रवण के द्वारा ही सम्भव है । यह कार्य पूर्ण सेवा भाव से युक्त होकर करना चाहिये ।[1]

"नेह विना हरि ना मले, करीये कोढी उपाय ।।[2]

कहकर निरांत ने भी ब्रम्ह को सेवा भाव द्वारा प्राप्त करने का उपाय बताया है ।

ब्रम्ह के चारण की उपासना को महत्व देते हुए बस्ता दर्शाते हैं कि उसके चरण की सेवा करने, ध्यान धरने, पूजा करने पर ही अपनी वृत्ति ब्रम्हमय हो जाती है -

"तेना चरण उपासता होय वृत्ति ब्रम्हाकार ।।[3]

वस्ता ब्रम्ह की उपासना में इस प्रकार रम गये हैं कि उन्हें अपने ज्ञान अर्थात् सिद्धान्तों का कोई ध्यान नहीं रहा कि पुराणों आदि में ब्रम्ह का क्या स्वरूप है ? उनके आराधक तो सबसे ऊँचे हैं :-

वेद पुराण सब देखिया
सबसे ऊँचा राम ।[4] ।।

----

(1) ध्यान स्मरण अरू सेबहि, इक यह त्रिगुनातित
क्षर अक्षर दुहु ते अंतत है, यह सर्वातीत ।। 155
- रसथाल - (पृ0 247)

(2) निरांत काव्य - 4

(3) ह0लि0 "वस्ता नी साखियों" (आत्मज्ञान अंग)

(4) ह0लि0 (अंग संत महातम को)

गुजरात के साखिकारों ने ब्रम्ह को विभिन्न नामों से सम्बोधित किया है । कृष्ण, राम, हरि, साहब, रहिम, गोविन्द आदि अनेक नामों से अभिहित किया है । समाज में धार्मिक समन्वय स्थापित करना ही इनका प्रधान ध्येय था । इस सम्बन्ध में भागवत् के ही सिद्धांत का अनुमोदन करते हुए श्री विजयेन्द्र स्नातक ने स्वीकार किया है कि विष्णु भक्ति के विकास में विष्णु, नारायण, वासुदेव, कृष्ण आदि भगवान के रूप की क्रमिक विकास-परम्परा है जो भगवान के व्यक्त रूप को उद्‌घाटित करती हुई आगे बढ़ती है । जो भेद है वह नाम में है । परम देवता में कोई भेद नहीं है ।[1] द्वितीयतः ये कवि अपने सम्प्रदाय में दीक्षित होने पर भी अपने सम्प्रदाय में रचना करने के साथ-साथ अन्य सम्प्रदायों की भावनाओं से प्रभावित होकर तद्नुरूप रचनायें भी करते थे जिसके कारण उस सम्प्रदाय के कुछएक प्रधान सिद्धान्त या गुढ़ तत्व इनकी रचनाओं में स्थान पा जाता था इस तथ्य का प्रत्यक्ष प्रमाण हम राजे भगत की काव्य कृतियों में पाते हैं ।

राजे मो लेसलाम मुसलमान होने पर भी एक वैष्णव कवि-भक्त थे ।[2] संत समागम के परिणामस्वरूप राजे में भक्ति के संस्कार जागृत हुए अतः गुजरात को एक सच्चा वैष्णव भक्त मिला । इन्होंने अपनी साखियों में ब्रम्ह को परमात्मा माना है और वही परमात्मा कृष्ण है, जो गोकुल गाँव में रहते हैं ।

तम माटे हूँ मोकलु हरीए गोकूल गाम
राजे रूड़ी वीरता कही छे सूदर साम ।।[3] 10

सम्प्रदायहिनता का प्रमाण देते हुए वस्ता भी लिखते हैं - "हुं तुं भाव शमी गया सबही साहेब मांही," "साहब" शब्द का प्रयोग कबीर का प्रभाव दर्शाता है ।

----

(1) राधा वल्लभ सम्प्रदाय - ।
(2) • राजे कृत काव्य संग्रह - (पृ० 9)
(3) राजेकृत काव्यसंग्रह (ब्रेहे गीता) - (पृ० 6)

निर्वाण साहब ने अपने ब्रम्ह को "साईं" कहकर संबोधित किया है । इनकी साखियों में यत्र-तत्र सांईं शब्द का प्रयोग स्पष्ट दिखाई देता है -

"बंदगी बखानों सांईं की, हरदम रहो लवलीन,[1] 22
"सांईं मिलन के दिन को, कैसे बहहु बखान ।। ८५

इस प्रकार अन्य विविध सम्प्रदायों से प्रभावित होकर गुजरात के संतों ने अपनी साखियों में तत् प्रभाव को दर्शाया है । वेदान्ति कवि वस्ता ने अपनी साखियों में "साहब" शब्द का प्रयोग किया है, भक्त संत निर्वाण साहब ने भी सांईं शब्द का प्रयोग इसी भाव से प्रेरित होकर किया है । कौमी एकता आपसी वैमनस्य को हटाने के लिए समाज के तथाकथित कर्णधार सक्षम नहीं थे । अत: सच्चे संत ही समाज हितैषी कार्य करने के लिए अपनी वाणियों में सच्ची साधना को महत्व दिया है ।

उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि गुजरात के साखिकारों ने गुजराती तथा हिन्दी दोनों भाषाओं में, वेदान्त, उपनिषद, गीता आदि की भावधाना एवं मानसिकता से प्रभावित होकर, ब्रम्ह का निरूपण विविध रूपों में सरलता एवं सफलता से किया है ।

॥1॥ निर्वाण साहब - ॥पृ0 863॥

जीव निरूपण :

उपनिषदों में जीव का वर्णन विविध प्रकार से किया गया है। बृहदारण्यकोपनिषद में एक स्थल पर प्राण शब्द आत्मा का वाचक है और सत्य शब्द माया का। अर्थात् जब आत्मा माया से आच्छन्न हो जाती है तभी जीव कहलाती है।[1]

गीता में "ममै वंशो जीव लोके जीव भूत: सनातन:" कहकर जीव को ब्रम्ह का ही अंश कहा गया है। संतों के मतानुसार जीव को ब्रम्ह का अंश माना गया है। संतों ने यह भी कहा है कि ब्रम्ह जब अहंकारग्रस्त हो जाता है तब उसे जीव कहते हैं।[2]

अद्वैत वेदान्त के अनुसार "अन्त:करणावच्छिन्न चैतन्य" को जीव कहते हैं। आचार्य शंकर की सम्मति में शरीर तथा इन्द्रिय समूह के अध्यक्ष और कर्मफल के भोक्ता आत्मा को ही जीव कहते हैं।[3]

वैष्णव दर्शन के अनुसार जीव अज्ञान, मोह, दु:ख, भयादि दोषों से युक्त तथा संसार शील होते हैं। संसार में प्रत्येक जीव अपना व्यक्तित्व पृथक बनायें रहते हैं। वह अन्य जीवों से भिन्न तथा सर्वज्ञ परमात्मा से तो सुतरां भिन्न हैं। भगवान के साथ चैतन्यांश को लेकर ही जीव की एकता प्रतिपादित की जाती है, परन्तु समस्त गुणों पर दृष्टिपात करने से दोनों का पृथकत्व ही प्रमाणसिद्ध है।[4]

‌1‌ हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठ भूमि - -डा० त्रिगुणायत गोविन्द - ‌पृ० 108‌

‌2‌ हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठ भूमि - त्रिगुणायत गोविन्द - ‌पृ० 425‌

‌3‌ भारतीय दर्शन - पं० बलदेव उपाध्याय - पृ० 456‌

‌4‌ भारतीय दर्शन - पं० बलदेव उपाध्याय - ‌पृ० 510‌

वैष्णव दर्शनानुसार भगवान को जब रमण करने की इच्छा उत्पन्न होती है, तब वे अपने आनन्दादिगुणों के अंशों को तिरोहित कर स्वयं "जीवरूप" ग्रहण कर लेते हैं। इस व्यापार में क्रीड़ा की इच्छा ही प्रधान कारण है, माया का सम्बन्ध तनिक भी नहीं रहता है। ब्रम्ह से जीव का उदय अग्नि स्फुलिंगवत् है।[1]

रामानुज का कहना है कि चिनगारी जिस प्रकार अग्नि का अंश है, देह देही का अंश है, उसी प्रकार जीव ब्रम्ह का अंश है। अभेदश्रुतियों का भी यही तात्पर्य है कि जीव ब्रम्हव्याप्य तथा ब्रम्ह का शरीर है। अत: जीव ब्रम्ह में अंशांशीभाव या विशेषण विशेष्यभाव सम्बन्ध है।[2]

आचार्य बल्लभ के अनुसार जीव अणुमात्र है। प्रकाश अथवा गन्ध की तरह उसका तेज सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है, जीव असंख्य, नित्य एवं सनातन है। अविद्या माया जीव से लिप्त रहती है। ब्रम्ह इससे सर्वथा मुक्त रहता है।[3]

संत, आत्मा को जीव, प्राण, मन, बुद्धि और देह से भिन्न मानते हैं। अत: उनके मतानुसार आत्मा जब अहंकारी, संसारी बंधन तथा जन्म मरण जैसे अनेक बन्धनों से युक्त हो जाती है तो उसे जीव के रूप में जन्म ग्रहण करना पड़ता है।

गुजरात के संतों ने अपनी साखियों में इन्हीं भावों को प्रधानता देते हुए, जीव की नश्वरता को स्पष्ट किया है। दु:ख कष्ट से युक्त जीव जन्म-मरण के प्रपंच में फंसकर बार-बार जन्म ग्रहण करता रहता है। सांसारिक प्रपंचों से मुक्ति ईश्वर के प्रति अगाध विश्वास तथा वैरागभाव से युक्त संतों की साखियाँ जीव को जीवनमुक्त होने का सच्चा राह दिखाती है।

----

(1) भारतीय दर्शन - (पृ0 525)

(2) भारतीय दर्शन - (पृ0 499)

(3) सूर एवं नरसिंह - तुलनात्मक अध्ययन - (पृ0 100)

छोटम ने गुजराती साखी में जीव के तुरीय अवस्था को प्राप्त होने पर उसके "शिव" होने की आस्था व्यक्त की है । जिस प्रकार सिंधु में सिंधव (सागर में नमक) मिल जाने पर उनके कोई भेद या पार्थक्य नहीं रह जाता उसी प्रकार तुरीय अवस्थाप्राप्त जीव शिव हो जाता है । दोनों एकाकार हो जाते हैं ।

जीव गया तुरिया पद, जीव शिव हो जाय,
सिंधु में सिंधव मील्या द्वैत भेद न रहाय ।।[1] 19

इसी भाव को छोटम ने एक अन्य साखी में भी स्पष्ट किया है । उनके अनुसार अगर कोई शिव को प्राप्त करना चाहता है तो उसे जीव में खोजना ही श्रेयकर है, क्योंकि शिव, जीव में स्थित रहता है । अत: जीव की भक्ति और सेवाभाव पर छोटम ने अधिक महत्व दिया है ।

जो कोई खोजे शिव को, तो खोजे जीवमांय,
जो जीव कु खोज्या नहीं, तो शिव पावे नाय ।।[2] 20

वस्ता ने अपनी गुजराती साखियों में शिव और जीव में द्वैतभाव के अभाव को स्पष्ट किया है । "एकोऽहम बहुस्याम" की भावना से शिव (परमात्मा) ही जीव (आत्मा) के रूप में परिणत हुआ है । अत: जीव और शिव एक हैं -

"जीव शिव एक मेलवे, परम आगोचर एह"[3] 33

जीव और ब्रम्ह के अंशाशी रूप की चर्चा करते हुए वस्ता ने जीव और ब्रम्ह के अभिन्न सम्बन्ध की चर्चा की है । इस जीव में अगर भक्ति उत्पन्न हो जाय

----

(1) छोटम नी वाणी - ग्रंथ 2 - (पृ0 255)

(2) छोटम नी वाणी - ग्रंथ 2 - (पृ0 255)

(3) ह0लि0 वस्ता नी साखियों

तो उसे हरि का ही "अंश" अर्थात् "दास" कहना चाहिए । क्योंकि भक्ति में ओत-प्रोत जीव का शरीर माया में लिप्त है परन्तु मन हरि अर्थात् ब्रम्ह के पास है । अत: वह "हरि का दास" कहलायेगा । अभेद प्रतियों के अंशाअंशी भावों को ही वस्ता ने अपनी साखियों में स्थान दिया है -

शरीर माया में रहे मन रहे हरि के पास,
ताकु जीव कहिए नहीं, कहिए हरि का दास ।।[1] 38

दादू ने कहा है -

देह रहे संसार में,
जीव राम के पास ।।[2]

जीव को ब्रम्हलीन होने के लिए, राम से एकात्म होने के लिए माया से निजात पाना होगा क्योंकि संसार में रहने पर मोहजाल में जड़ित होना सामान्य कार्य है परन्तु जीव का ब्रम्ह से जुड़ जाना उसके अंश में लीन होना दर्शाता है ।

दयाराम ने गुजराती साखी में "जीव सर्व हरि अंश छे" कहकर इसी भाव की पुष्टि की है । इन्होंने प्रभु प्रेम के साथ-साथ मानव प्रेम का समन्वय किया है । छोटे से छोटा अंश से लेकर बड़े से बड़े जीव में प्रभु का चैतन्य स्वरूप व्याप्त है । अत: जो सच्चा वैष्णव होता है वह प्रभु द्वारा रचित प्रत्येक जीव के साथ प्रेम पूर्वक व्यवहार करता है । दयाराम ने "वैष्णव दर्शन" के अनुसार "संसार के प्रत्येक जीव अपना व्यक्तित्व पृथक बनाये रखते हैं" के तथ्य की पुष्टि की है ।

मनुष्य के जन्म में राम की महत्ता को स्पष्ट करते हुए वस्ता लिखते हैं कि "मनुष्य जन्म ए जीव है, त्यां राम रसना होय" ।5 (ह॰ लि॰ ।5) इस मनुष्य के जन्म में राम का अर्थात् ब्रम्ह की स्थिति को दर्शाया है क्योंकि मनुष्य और राम में इस प्रकार घनिष्टता है जिस प्रकार जीव और ब्रम्ह में अभेद है ।

----

(1) वस्ता नी साखियों - ह०लि०

(2) संक्षिप्त सुधा सार - (पृ० 296)

देवा साहब ने जीव को ब्रम्ह के प्रकाश से प्रकाशमान माना है । इस चराचर जगत में जो कुछ भी है सब "तुमसे" अर्थात् ब्रम्ह से प्रतिभासित होता है । यह जगत ब्रम्ह का लीला क्षेत्र है जिसमें इसके रचयिता अर्थात् ब्रम्ह सर्वत्र व्याप्त है ।

जगत चराचर जो कछू । तुमते भया प्रकास ।
इह लिला सब तुमरि प्रभू । स्वामी सर्वावास ।।[1] 5

जीव माया, मोह, लोभ के जाल में जब फंस जाता है तब वह पुन:पुन: जन्म धारण करता है । वैष्णव दर्शन के अनुसार देवासाहब ने स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि जब तक जीव में ब्रम्ह के प्रति लगनी नहीं उपजेगी ﴾अध्यात्म ज्ञान नहीं उपजेगा﴿ तब तक वह इस माया रूपी संसार में भटकता रहेगा । प्रत्येक बार काल उसका अनुसरण करेगा । अर्थात् जीव को ब्रम्ह में लीन होने के लिए उसके आवागमन के द्वार को रोध करना आवश्यक है ।[2]

रवि साहब के अनुसार जीव माया में जकड़ जाने के कारण ईश्वर से दूर हो जाता है जब अज्ञानी जीव के प्रकाश में आता है तब उसे ब्रम्ह प्राप्ति हो जाता है -

रवीदास ऐसा जीवड़ा, पड़त नरक में जान,

रवि साहब को जीव की अज्ञानता पर तरस आता है अत: जीव को कहते हैं कि जीव और परमात्मा के बीच विभेद पैदा करने वाले तत्वों से सावधान रहे । जिससे यमराज के आने पर वह तटस्थ रहे ।[3]

﴾1﴿ रामसागर - ﴾पृ0 129﴿

﴾2﴿ अध्यात्म एक ज्ञान विन ।। कुसल न पावें कोई ।।
अथवा सुक्ष्म जीव हैं ।। अथवा ब्रम्ह होई ।। 10
- रामसागर ﴾पृ0 131﴿

﴾3﴿ रवीदास ऐसा जीवडा पड़त नरक में जान
संसारी से प्रीतड़ी, साधु कु नहीं मान ।। 48
- रवीदास की वाणी ﴾पृ0 402﴿

जीव को अपने जीवनकाल में चार अवस्थाओं से पार होना पड़ता है बालपन, कुमारावस्था, यौवन और मृत्यु । इन सबमें फंसकर जीव ब्रम्ह की आराधना करना भूल जाता है ।

बाल कुमार जोबन जरा, मानत बीन हरी शरन
रवीराम रमता लख्या, जोबन जरा न मरन ।।[1] 46

राजे भगत ने जल की एक बूंद से इस पिंड की श्रृष्टि हुई है, इसे स्पष्ट किया है । इस सारी सृष्टि का किरतार ब्रम्ह है उसी ने इस विश्व की रचना की है । अत: पिंड और ब्रम्हाण्ड की सृष्टि का आधार ब्रम्ह है -

पानी केरी बूंद से प्रभू बनाएआ पंड
राजे तामा दे गीये पंड अने तरमंड ।।[2] 19

जीव और ब्रम्ह में अरस-परस के सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए बस्ता कहते हैं कि इन दोनों का सम्बन्ध इतना घनिष्ट है जैसे नेत्र के साथ तेज का, रात के साथ दिन का, वृक्ष का और बीज का -

"भेलो दिवस-रेत"
वृक्ष बीज विचारता, तथा

"राम हमारे पक्षी हैं हम राम की पांख"[3] कहा है ।

----

§1§ रवीदास नी साखियों - §पृ0 342§

§2§ राजे कृत काव्य संग्रह - §पृ0 216§

§3§ बस्ता नी साखियों - ह0लि0§पृ0

तात्पर्य यह है कि गुजरात के साखिकारों ने जीव के सम्बन्ध में किसी एक सम्प्रदाय ~~का~~ या सांस्कृतिक ग्रन्थों के सिद्धान्तों का प्रतिपाद नहीं किया । जीव और ब्रम्ह के एकत्व का तो कहीं जीव का तुरीय रूप में वर्णन, कहीं-कहीं अति सूक्ष्म रूप से जीव और ब्रम्ह में आत्मा तथा परमात्मा में भेद का कारण जीव की अज्ञानता को स्पष्ट किया है । शायद इसीलिए नरसी ने भक्ति भाव से प्रेरित होकर अपने एक पद में कहा है -

देह छे जूठड़ी, करम छे जूठड़ा, भीड़ भंजन तारू नाम साचुं ।

<u>जगत निरूपण</u> :

श्रौत दर्शनानुसार "ब्रम्ह ही इस सृष्टि का उपादान तथा निमित दोनों कारण है ।" मुण्डक उपनिषद का कहना है कि जिस प्रकार मकड़ा अपने शरीर से जाला तानता है तथा उसे अपने शरीर में ही समेट लेता है, उसी प्रकार उस नित्य ब्रम्ह ।अक्षर। से यह समस्त विश्व उत्पन्न होता है । परमात्मा से पहले आकाश उत्पन्न हुआ, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से समस्त जीवजन्तुमय जगत् । इस जगत के लय होने का क्रम इससे ठीक विपरीत है ।[1]

गीता के शब्दों में भगवान सब भूतों का सनातन अविनाशी बीज है । बीज से वृक्ष उत्पन्न होता है तथा अन्त में फिर उसी में लीन हो जाता है, उसी प्रकार यह जगत भगवान से उत्पन्न होता है तथा फिर उन्हीं में विलीन हो जाता है ।

जगत का उपादान और निमित्त कारण ब्रम्ह ही है । जगत भगवद्रूप है एवं भगवान से अभिन्न है । जगत सत है तभी तो "भावे च उपलब्धे" के अनुसार उसकी उपलब्धि होती है । घट की सत्ता विद्यमान है तभी उसकी उपलब्धि सम्भव है । घट जैसे मिट्टी का ही प्रकार है वैसे ही जगत भी ब्रम्ह का ही रूप है ।

बल्लभाचार्य के अनुसार जगत का परिणाम ब्रम्ह से है परन्तु ब्रम्ह में किसी प्रकार का परिवर्तन या विकार उत्पन्न नहीं होता है। बल्लभाचार्य इसलिए अपने विशिष्ट मत को "अविकृत परिणामवाद" के नाम से पुकारते हैं ।[2]

चैतन्य मत में जगत प्रपंच नितरां सत्यभूत पदार्थ है क्योंकि यह सत्य संकल्प संतविद् हरि की बहिरङ्ग शक्ति का विलास है ।

।1। भारतीय दर्शन - बलदेव उपाध्याय ।पृ0 80।

।2। भारतीय दर्शन ।पृ0 528।

विष्णु पुराण में स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि यह अखिल जगत् जन्म तथा नाश आदि विकल्पों से युक्त होने पर भी अक्षय तथा नित्य है । महाभारत भी जगत को सत्य तथा भूतमय मानता है । जगत सच्चा अवश्य है तब इसे अनित्य कहने का तात्पर्य यह है कि दुःख-बहुल होने से साधक को इससे विरक्त रहना चाहिये । वैराग्य के लिए ही संसार को अनित्य कहा गया है ।[1]

तात्पर्य यह है कि जगत ब्रम्हरूप है, जीव अविद्या-जन्य अभिमान, अहंकार आदि भावों से युक्त होने के कारण इस संसारिक प्रपंचों में युक्त होकर कष्ट भोगता है । ज्ञानोपलब्धि से संसार की असारता को त्याग कर भक्तिभाव से ओत-प्रोत होकर ईश्वर के भजन मनन में लिप्त रहकर मोक्ष प्राप्त कर सकता है । परन्तु यह संसार यथावत् बना रहेगा ।[2]

देवा साहब ने अपनी साखियों में ब्रम्ह को ज्योत स्वरूप कहकर ब्रम्ह और जगत की अभिन्नता को दर्शाया है । जिस प्रकार रवि से उसकी किरणें भिन्न नहीं है उसी प्रकार यह जगत और ब्रम्ह में भिन्नता नहीं है ।

ब्रम्ह जगत अंतर नहीं । मिनकछु एनाहीं ।।
रवि किरन ज्यो जानीए । रूप अरूणी माही ।।[3] 9

पुनः देवा साहब व्यष्टि और समष्टि की एकता को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार एक ही बीज से उत्पन्न होने वाले वृक्ष में बीज की सत्ता उपस्थित रहती है उसी प्रकार ब्रम्ह से उत्पन्न हुए इस जगत में ब्रम्ह का ही अंश उपस्थित रहता है । इन्होंने ब्रम्ह और जगत की एकता को महत्व दिया है ।

----

§1§ भारतीय दर्शन - §पृ0 534§

§2§ हिन्दी की निर्गुण काव्य धारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठ भूमि

§3§ रामसागर - §पृ0 121§

विष्टी समष्टी ब्रम्ह सब । यामे भेद ना आन ।।
जैसे तरवट बिजहिं । एक रूप करि भान ।।[1] 7

राजे का कहना है कि इस संसार के माया जाल में फंसकर जीव इतना मोहग्रस्त हो जाता है कि इसे छोड़कर जाने की कल्पना से भी तड़प उठता है । इसी कष्टभाव से मानव को निवृत्ति दिलाने के लिए राजे सीख देते हैं कि जो इस दुनिया में आया उसका जाना निश्चित है । जगत की अनित्यता बताकर राजे इस संसार में आना-जाना साधारण नियम जानकर इसे अपनी साखियों में स्पष्ट करते हैं -

राजे जग मा जानीये जे आवे ते जाए ।[2] 105

उपनिषदों में कहा गया है कि ब्रम्ह का न तो कोई कारण है और न कोई कार्य, किन्तु फिर भी उसकी स्वाभाविक ज्ञान, बल और क्रिया का परिचय सृष्टि व्यापारों में मिलता है । ब्रम्ह माया है और अपनी माया से वह विश्व-रचना करता है ।

प्रीतम ने इसी भाव से प्रभावित होकर कहा है -

ज्युं सिंधु में होत है, लहरी अनंत अपार
कहे प्रीतम युं ब्रम्ह में उपजे सब संसार ।[3] 6

भक्त कवि दयाराम बल्लभाचार्य की विचार धाराओं से प्रभावित थे । बल्लभाचार्य ने बड़े स्वाभाविक ढंग से मनुष्य की स्वाभाविक इच्छाओं को ईश्वरोन्मुखी करने का प्रयत्न किया है । उनके अनुसार जगत से भागने की कोई

----

(1) रामसागर - (पृ0 12)

(2) राजेकृत काव्य संग्रह - (पृ0 224)

(3) प्रीतम वाणी (पृ0 9)

आवश्यकता नहीं । उस प्रभु के लीला-विलास का दर्शन इसी जगत में किया जा सकता है । अत: दयाराम ने भी अपनी दार्शनिक विचार धारा में बल्लभाचार्य की विचार पद्धति को अपनाया है ।[1] कवि ने कई जगह जगत की नित्यता का प्रतिपादन किया है । उन्होंने स्पष्ट किया है कि कुछ अंश में ब्रम्ह इस जगत में विद्यमान रहता है, जिस प्रकार कनक और उससे निर्मित कुण्डल में कोई भेद नहीं होता उसी प्रकार ब्रम्ह और जगत अभेद है -

ईश्वर कारण सत्य सदा,
तब कारण जगत सु जुठ न होई,
कंचन ते जस कुण्डल, कंकन, कंचन ही वह भेद न कोई । ।2

बल्लभमत में जगत और संसार में एक विलक्षण पार्थक्य स्वीकृत किया जाता है । ईश्वर के विलास से सदंश से प्रादुभार्व पदार्थ को "जगत" कहते है, परन्तु पन्चपर्वा अविधा के द्वारा जीव के द्वारा कल्पित ममता रूप पदार्थ की संज्ञा "संसार" है । अत: "संसार" का नाश होता है परन्तु "जगत" का विनाश सम्भव नहीं है।[2]

तेजानंद ने इसी भाव को अपनी साखियों में स्पष्ट किया है । उन्होंने संसार की असारता को दर्शाकर कहा है -

यह संसार असार है, मानो बड़ो उत्पात[3] ।2

भाभाराम ने भी इस संसार की सराय के साथ तुलना की है । जिस प्रकार इसकी स्थिति और इसमें रहनेवालों की स्थिरता नहीं रहती उसी प्रकार इस संसार और इसमें रहनेवाले जीव की स्थिरता नहीं -

संसार देखी सराह, ऐक आवे एक जाय
- भाभाराम की वाणी

---

(1) दयाराम और उनकी हिन्दी कविता - महावीर सिंह (पृ0 145)

(2) भारतीय दर्शन - (पृ0 529)

(3) तेजानंद स्वामी - (पृ0 606)

वस्ता भी बल्लभ के इसी भाव को महत्व देते हैं । वे कहते हैं कि यह संसार ओस के मोती जैसी है । इसलिए यह क्षणिक है । अत: मूढ गंवार जीव इसके जाल में फंसकर ब्रम्ह को भूल जाता है ।

क्या भूले संसार में अंधो मूढ़ गंवार
जेवा मोती ओसना तेवो आ संसार ।[1]

देवासाहब ने कबीर की तरह संसार को स्वप्न की तरह मिथ्या कहा है । "संसार ऐसा सुपनी जैसा" यही भाव को हम देवा में भी देखते हैं - - "सुपन जानी संसार" देवा "रामसागर" "संसार" और जगत के भेद को स्पष्ट करते हुए देवा कहते हैं - "जगत परिब्रम्ह रूप ।" पहले देवा "संसार" को "स्वप्न" कहते हैं तत्पश्चात "जगत" को "परमब्रम्ह का रूप कहते हैं ।" अत: देवा जगत का अविनाशी और संसार का विनाशी रूप को अपनी साखियों में स्पष्ट करते हैं ।

एक अन्य साखी में देवा साहब ने इस जगत को ब्रम्ह का विलास क्षेत्र कहा है । इसे वाजीगर का खेल भी कहा जा सकता है -

इस विलास सब ब्रम्ह को,
निरमल दृष्टि सुं देख ।।[2] 42

---

§1§ वस्ता नी साखियों - §अंग चेतावनी को§ - ह0लि0

§2§ रामसागर - §पृ0 129§

माया निरूपण :

माया ही जागतिक भेद का कारण है । ऋग्वैदिक काल से लेकर तंत्रयुग के अन्तिम चरण तक किसी न किसी रूप में इसकी प्रतिष्ठा की जा रही है । मायावाद का प्रथम बीजारोपण ऋग्वेद में हो गया था । इसके बाद इसका विकास उपनिषद साहित्य में हुआ ।

गीता में माया को गुणमयी बताया गया है और कहा गया है कि जो ईश्वर की शरण में जाते हैं वे माया को पार कर जाते हैं ।

ईश्वर सब प्राणियों के हृदय में रहकर [अपनी] योगमाया से प्राणी मात्र को घुमा रहा है मानों सभी [किसी] यंत्र पर चढ़ाए गए हों ।

मानसिक कर्म में प्रवृत्त करनेवाली वस्तुएँ एवं नैतिक और अनैतिक प्रवृत्तियाँ गुणों के प्रभाव द्वारा उत्पन्न होती है एवं ईश्वर प्रकृति के गुणों का सनातन बीज है । अतः गीता में माया का तात्पर्य गुणों से है । जो ईश्वर प्रदत्त है ।[1] इस प्रकार गीता के मत में जगत का माया स्वरूप मिथ्या नहीं माना गया है ।

यदि माया को ब्रम्ह की शक्ति माना जाय तो बल्लभ उसे स्वीकार करने को तैयार है किन्तु यदि माया को मिथ्या माना जाय तो वे ऐसे पदार्थ के अस्तित्व को अस्वीकृत करते हैं ।[2]

---

[1] भारतीय दर्शन - [पृ0 472] भाग-2

[2] भारतीय दर्शन - [पृ0 376] भाग-2

4

शंकराचार्य ने दृश्यमान जगत को मिथ्या या भ्रम कहा है और माया को अनिर्वचनीय माना है । माया न सत्य है न असत्य । यह परमात्मा की तुच्छ शक्ति है परन्तु रामानुजाचार्य ने इसे स्वीकार नहीं किया है । उनके अनुसार अगर यह जगत परमात्मा से उत्पन्न है तो वह मिथ्या नहीं हो सकता । यदि परमात्मा सत्य है तो जगत भी सत्य है । जगत मायामय है यह सम्भव है परन्तु मिथ्या और अनिर्वचनीय है इसमें संदेह है । माया भी ब्रम्ह के अधीन है । उनके अनुभवानुसार संसार में वस्तुयें सत्य या असत्य दोनों संभव नहीं है । ईश्वर माया से स्वतन्त्र है और माया ईश्वराधीन है और ब्रम्ह में निवास करती है ।[1]

माया की स्थिति और उसकी व्यापकता का आभाव हमें उक्त दार्शनिकों के विचारों में मिलता है ।

शंकराचार्य ने माया तथा अविद्या शब्दों का प्रयोग समानार्थक रूप से किया है परन्तु परवर्ती दार्शनिकों ने इन दोनों शब्दों में सूक्ष्म अर्थ-भेद की कल्पना की है । परमेश्वर की बीज शक्ति का नाम "माया" है । अग्नि की दाहिका शक्ति के अनुरूप ही माया ब्रम्ह की सदा संग रहनेवाली शक्ति है । ब्रम्ह का ज्ञान होने पर माया का ज्ञान बाधित हो जाता है । ब्रम्हज्ञानी को माया का बाध कभी नहीं होता केवल अज्ञानी ही माया के पचड़े में फिरता रहता है ।[2]

रामानुज माया को ईश्वर की सर्जन शक्ति मानते हैं जो वहाँ नित्य निवास करती है ।[3]

----

(1) तुलसीदास : जीवनी और विचार धारा (पृ० 328)

(2) भारतीय दर्शन - (पृ० 450)

(3) भारतीय दर्शन - (पृ० 453)

माया तत्व की विशद व्यावहारिकता पर श्रीमद्भागवत् का प्रभाव स्पष्ट है । इसमें माया की निंदा की गई है, किन्तु यह ब्रम्ह शक्ति है और शक्ति की उपासना का विधान भी उसमें विहित है ।

शंकराचार्य के अनुसार माया भ्रमरूपा है परन्तु वल्लभाचार्य के अनुसार माया ब्रम्हवशा है ।[1]

शंकराचार्य ने माया का स्वरूप वर्णन करते समय लिखा है कि माया भगवान की अव्यक्त शक्ति है जिसके आदि का पता नहीं चलता वह गुणत्रय से युक्त अविद्यारूपिणी है । उसका पता उसके कार्यों से चलता है । वही इस जगत को उत्पन्न करती है ।[2]

शंकर मत से प्रभावित होने के कारण गुजराती साखिकारों की साखियों में माया की उत्पत्ति, प्रकृति, रूप, शक्ति एवं उससे मुक्त होने के उपायों का भी वर्णन, निरूपण एवं प्रतिपादन मिलता है । कहीं पर अनिर्वचनीय और कहीं सगुण भी कहा है । माया का प्रत्यक्ष रूप जगत है ।

मूलतः इन साखिकारों ने माया का वर्णन जो किया है उसे अध्ययन की सरलता की दृष्टि से दो भागों में बांटा जा सकता है -

अ॥ माया का स्वरूप वर्णन
ब॥ माया का नाश, ॥माया से निजात॥ और निजात का परिणाम ।

अ॥ माया के स्वरूप का वर्णन करते हुए प्रीतम कहते हैं कि ईश्वर ही मूल है और इसके माया से इस ब्रम्हाण्ड की उत्पत्ति हुई है -

----

॥1॥ सूर और नरसिंह : तुलनात्मक अध्ययन - ॥पृ0 107॥

॥2॥ भारतीय दर्शन - ॥पृ0 450॥

"मूल माया ईश्वर थकी उपजाव्यु ब्रह्माण्ड,[1] 2

प्रत्येक अणु में ईश्वर व्याप्त है चाहे छोटा हो चाहे बड़ा । इन अणुओं की समष्टि से ही विराट की रचना होती है और इन सबकी रचना ईश्वर के माया के अन्तर्गत आता है । अपनी गुजराती साखी में इसी भाव को महत्व देते हुए प्रीतम स्पष्ट करते हैं कि -

"माया मसाले सब बना, नाना मोटा घाट
कहे प्रीतम अणु आदि लई, सूक्ष्म अणु वैराट 8 ।पृ0 86।

माया सदा जीव को भ्रमित करती रहती है । जीव इसके भ्रम में पड़कर इस जग से, संसार से इस प्रकार जुड़ जाता है कि उसकी मुक्ति असम्भव हो जाती है । जीव को संसारी विषयों में फँसाये रखने का कार्य इसी अविधा माया का है । माया अविधारूपी होने के कारण इसमें अनेक अवगुण होते हैं । अत: जीव को इसके जाल से दूर रहना चाहिये । जीव को विचलित करनेवाली शक्ति के रूप में माया का वर्णन वस्ता ने किया है । जिस प्रकार समुद्र की तरंगे स्थिर नहीं रहती उसमें लहरें उठती रहती है उसी प्रकार माया चंचल और चपल है । माया के जाल में पाँव पड़ते ही जीव डूब जाता है । अत: ज्ञानी इससे दूर रहता है । वह केवल अपने ज्ञान के कारण ही माया के जाल से खुद को सावधान रखता है ।[2]

।1। प्रीतम वाणी - ।माया अंग। - ।पृ0 86।

।2। माया चंचल चांवली जैसा समुद्र पुर
तामां बलम बहोत है तासे रहीए दूर ।

तामां पांव जे को धरे, ताकु देत डूबाय
ज्ञानी ज्ञान विचार के उनथे न्यारा जाय ।।

- ह0लि0 वस्ता नी साखियाँ - माया अंग

वस्ता के अनुसार माया सब सांसारिक सम्बन्धों का मूल है । कवि के अनुसार माया और अज्ञान एक ही है । इसी अज्ञान तिमिर में पड़कर मनुष्य अपना उद्देश्य भूल जाता है । करुणामय प्रभु की सेवा को छोड़कर भक्त मोह में पड़ जाता है । वस्ता ने माया को भगवान की ऐसी शक्ति बताया है जिससे यह मिथ्या संसार सत्य सा प्रतीत होता है । जब मनुष्य को कनक और कामिनी मिल जाती है तो वह अहंकार भाव से ग्रसीत होकर हरि से दूर हो जाता है ।[1]

प्रीतम ने अविद्या माया का वर्णन अपनी साखियों में किया है । अविद्या जन्य अहंकार को प्रीतम जीव एवं ब्रम्ह के बीच पड़ा हुआ आवरण मानते हैं । माया का प्रभाव इस धरा के प्रत्येक जीव को आवृत्त किए हुए है । यही जीव के अन्तर में अहंकार को उत्प्रेरित करती है । यह जीव को ब्रम्ह ज्ञान से अवरुद्ध करता है । अत: माया के आवरण के हटते ही जीव को ब्रम्ह दर्शन होता है -

"माया सबसे मिल रही, अविद्या भिखावे आन,
कहे प्रीतम आकृति नहीं, अव्याकृत अहमान ।[2] 2

प्रीतम के अनुसार जीव पर माया का आवरण पड़ा हुआ है और यह आवरण आठ प्रकार का होता है - ॥1॥ पृथ्वी, ॥2॥ पानी, ॥3॥ तेज, ॥4॥ वायु, ॥5॥ गगन, ॥6॥ गुण, ॥7॥ अहंकार, ॥8॥ मन । इन आवरणों के कारण जीव ईश्वरोन्मुख नहीं हो सकता।[3]

॥1॥ जस जाये प्रताप जाये, घटे हरिसु ध्यान,
कनक कामिनी जब मले, तब बहुत धरे अभिमान ।
- वस्तानी साखियो ॥माया अंग॥

॥2॥ प्रीतम वाणी - ॥पृ0 8॥

॥3॥ माया आवृण अष्ट है, पृथ्वी उदक तेज
कहे प्रीतम वायु गगन, गुण अहंकार मन एक
- प्रीतम वाणी - माया अंग - पृ0 128॥

एक अन्य साखी में प्रीतम ने माया को अविद्या, अव्याकृत, अक्षर अज्ञान, प्रकृति, अजा, क्षेत्रधाम प्रधान आदि कहा है । जिस समय ब्रम्ह माया को अंगीकार करता है उस समय माया में ब्रम्ह का तेज प्रविष्ट होता है ऐसी अवस्था में माया स्वतः सर्जक ईश्वर होकर विलसती है ।[1]

रवि साहब ने गुजराती साखी में माया के नटी रूप का वर्णन किया है । इसके ‖द्वापर, त्रेताकालीन‖ युग में प्रवेश करने के कारण सर्वत्र ही उसका विलास हो रहा है । उसकी पहुँच आकाश और पाताल तक भी है । कवि ने माया के विशाल और सर्वव्यापी रूप का उल्लेख किया है ।

माया मलीन महा साली, युग मां कर्यो प्रवेश
स्वर्ग मृत्यु पाताल मांही, माया तणो प्रवेश ।[2]

कवि ने अन्यत्र माया के स्वरूप का वर्णन करते हुए गुजराती में स्पष्ट किया है कि यह माया राम द्वारा ‖ब्रम्ह द्वारा‖ फैलाई गई है । जिसकी व्याख्या तीनों लोकों में है । अज्ञानी इसमें फंसकर अपना उद्देश्य भूल जाता है । उत्तम कार्य में यह बाधारूप उपस्थित होती है । जहाँ भी भजन, सत्संग आदि होता है वहाँ माया खलल डालती है । अतः इसके प्रकोप से बिरला ही उद्धार पाता है ।

‖1‖ माया अविद्या अव्याकृत, अक्षर अस अज्ञान,
कहे प्रीतम प्रकृति अजा, क्षेत्रधाम प्रधान । 20
- प्रीतम वाणी - ‖पृ० 87‖

‖2‖ रवी भाण सम्प्रदाय - ‖पृ० 10‖

रवी माया राम की व्याप रही त्रिलोक-
बीच में आड़ पकड़े बहु, बचे वीरता कोक।
रवीदास माया बुरी, करे भजन में भंग,
वहेर उठावे वहाल में, छोड़ावे सत्संग ।[1]

संत निर्वाण ने माया के स्वरूप को स्पष्ट करके कहा कि अज्ञानी ही इस भवसागर में डूब जाता है "नख शिख से बह जावें" कहकर यह स्पष्ट किया है कि संसार में पूर्ण रूप से रच बस जाता है और

जल बूड़ा दिग उबरे, भग बूड़ा बहि जावे,[2]

कहकर उसका उबरना असम्भव कहा है ।

जीवणदास ‡राम कबीर‡ कहते हैं जो व्यक्ति माया के जाल में फँसा होता है वह अपने स्वार्थ में लिप्त होता है अर्थात् उसमें मेरे तेरे भाव की प्रधानता होती है, लोभ और मोह में जनीत भावों की प्रधानता होती है । गुजराती भाषा में कवि ने इसी भाव को साखियों में स्पष्ट किया है -

मारूं तारूं आपणुं, ये माया व्यवहार ।।[3]

छोटम ने माया को मन की कल्पना कहा है क्योंकि माया का प्रभाव मन पर ही पड़ता है । इसकी नित्यता और अनित्यता केवल कल्पना मात्र है । अत: छोटम ने माया के स्वरूप को क्षणिक कहा है क्योंकि ज्ञान के उदय होते ही इसका प्रभाव पर्दे की तरह हट जाता है -

को कहे माया नित्य है, कोय कहे अनित्य

इस माया की कौशल देखकर मानव की बुद्धि हैरान रह जाती है । जगत की सृष्टि माया का ही क्रिया कलाप है इस प्रकार माया

---

‡1‡ रवी साहब की वाणी - ‡पृ0 367‡

‡2‡ संत निर्वाण साहब - ‡पृ0 860‡

‡3‡ उधाधर्म पंचरत्न माला - ‡पृ0 152‡

अपने रचनाकल पर लोगों को भ्रम में डालती है ।

भ्रांति मानी जगत को, गये लोक भरमाय । ।9 (पृ0 256)

छोटम ने अज्ञान और असत्य को माया का मुख्य प्रपंच माना है । वेदान्त में भी इनको "माया के रूप" कह कर स्पष्ट किया गया है । इन दोनों के प्रभाव से माया जीव को वश में रखती है इसके कारण जीव प्रभावहीन हो जाता है । ~~जड़ता~~

जड़ता और असत्यता, त्रीजी दुःख स्वरूप
कहयो सकल वेदांत में, ए माया को रूप ।।[1]

ब) <u>माया नाश</u>

संतों ने अपनी साखियों में माया का नाश करनेवाले, कार्यकलापों का भी वर्णन किया है । भक्ति भाव से ओत प्रोत इनकी साखियाँ भक्त को सत पथ और इश्वरोन्मुख करती है ।

तेजानंद के अनुसार जीव जब माया में डूब जाता है तब उसका उद्धार होना असम्भव हो जाता है । क्योंकि माया के प्रपंचों को समझकर चेतना स्पष्ट होते तक उसका सामना यमराज से होता है । अत: कवि कहते हैं मन को विषय वस्तु से दूर रखकर हरि भजन में लिप्त रहना ही संसारी का ध्येय होना चाहिये । अत: कवि हरि भजन में रम जाना ही माया से निजात का एक मात्र उपाय बताते हैं -

मन तेरो माने नहीं, डूबत विषय की ओर
तेजा नैना जब खुले, लगे काल की चोट ।[2] ।।

---

(1) छोटम नी वाणी - (पृ0 855)

(2) तेजानंद की साखियाँ

माया से निजात का एक अन्य उपाय दर्शाते हुए रवि साहब कहते हैं कि भक्त को सत गुरू के पास अपना तन, मन और धन तीनों सौंप देना चाहिये । अतः यह जो काया और जीव को वश करने वाली माया है वह जीव को प्रभावित नहीं कर सकती । उसका रक्षा करनेवाला, उसको बचाने वाला, उसे सच्चा राह दिखाने वाला सदगुरू उसे माया के प्रपंचों से मुक्त रखेगा -

अब मोय माया न नड़े, काया करमही शोत
तन मन धन गुरू कु दीया, रवी कीनि बहोत ।[1] 215

राम की महत्ता दर्शाते हुए कवि कहते हैं -

रवीदास राम पोकारता, प्राणी पावे पार,
दुजा मिले न आसरा, साध्यो सब संसार । 107 ﴾पृ0 246﴿

जीवणदास ने भी माया से मुक्ति पाने का एक मात्र उपाय राम की भक्ति कहा है । "राम भगत कु जीवणा । सब दीसे एकाकार ।[2] 14

तेजानंद भी इसी भाव को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि राम का नाम एक मात्र उद्धार करने वाला है क्योंकि जीव आत्म केन्द्रित होकर बाह्य सुख के भोग में इस प्रकार व्यस्त हो जाता है कि ईश्वर का विस्मरण कर देता है । अतः यह मानव शरीर की सुन्दरता पर न रिझकर, अहंकार ग्रस्त न होकर अन्तरस्थ होकर राम नाम पर मन को केन्द्रित करना चाहिये ।

﴾1﴿ रवीदास नी वाणी ﴾पृ0 230﴿
﴾2﴿ उदाधर्म पंचरत्न माला ﴾पृ0 152﴿

माया देख मत भूलीयो, थारे राम को नाम
"तेजा" काम न आवहि, यह तन सुन्दर धाम ।[1] 5

दादू माया के वशीकरण की वृत्ति को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि माया ने असुर, नर और ज्ञानी लोगों को भ्रमित किया है । इसके प्रताप से ब्रम्हा, विष्णु और महेश भी नहीं बच सके । सब इसके वश में है परन्तु एक स्थान पर यही माया अपना विस्तार नहीं कर सकी वह है साधू, अर्थात् भक्त, ईश्वर के सच्चे उपासक । अतः भक्ति जहाँ है वहाँ माया का प्रताप नहीं हो सकता ।

"सुर नर मुनिवर बस किये, ब्रह्मा विश्न महेश,
सगल लोग के सिर खड़ी, साधू के पग हेठ ।[2]

देवासाहब ने मायाजनित संसार में जीव के ईश्वर के प्रति भक्तिभाव को महत्त्व देते हुए कहा है कि भक्त का ईश्वर के प्रति आराधना ही माया से निजात पाने का प्रधान रास्ता है । जिसके मन में माया का निवास है वह भक्ति में लीन नहीं हो सकता । जिस प्रकार चींटी दो दानों को एक साथ मुँह में लेकर नहीं चल सकती उसी प्रकार भक्ति और माया साथ-साथ नहीं रह सकते हैं -

जाको मन माया विषै, ताको न हरि सो हेत ।
चींटी जैसे मुख में, दो दाने नहीं लेत ।।[3] ।

- 1 संत तेजानंद पृ0 605
- 2 दादू दयाल पृ0 289
- 3 रामसागर - पृ0 144

दादू ने माया रूपी प्रपंच से बचने के लिए साखियों में माया के विभिन्न स्वरूपों का वर्णन किया है। उनके अनुसार माया साधु की चेरी है, ब्रम्ह की दासी है और सब जगत की ठाकुरानी है। सारा विश्व उसके प्रपंच में फंसा हुआ है। इस प्रकार वह तीनों लोकों में वास करती है। दादू ने माया की व्यापकता को स्पष्ट किया है। उनके अनुसार जिस जीव को ब्रम्ह का ज्ञान नहीं है वहाँ माया अपना राज्य विस्तार करती है। अर्थात् अपना मंगल गान करती है। अतः कवि जीव को कहते हैं कि उसे ज्ञान प्राप्त करके ईश्वर की आराधना करनी चाहिये। जिस घर में ब्रम्ह ज्ञान हो जाय उसका उद्धार हो जाता है क्योंकि वहाँ से माया अपना विस्तार समेट कर भ्रमित होकर प्रस्थान करती है -

दादू माया चेरी सन्त की, दासी उस दरबारी ।
ठकुरानी सब जगत की, तीन्यू लोक मंझारि ।।
दादू जेहिं घट ब्रम्ह न प्रगटे, तहँ माया मंगल गाई ।
दादू जागे जोति जब, तब माया भरम विलाई ।[1] 10

सारांश रूप में कह सकते हैं कि माया का वर्णन साखिकारों ने अपनी साखियों में विपुल किया है। उनमें वैचारिक भिन्नता होते हुए भी माया स्वरूप, माया नाश, माया का प्रभाव आदि के निरूपण में वे एक दूसरे से समानता रखते हैं। जीवन की सार्थकता माया से मुक्ति पाकर ब्रम्ह के स्वरूप का अनुसंधान है। यह अनुसंधान आत्मसाक्षात् होने पर पूर्ण होती है जिससे दिव्यानंद की अनुभूति होती है। इसी भाव को गुजरात के साखिकारों ने अपनी साखियों में व्यक्त किया है।

---

(1) संक्षिप्त संत सुधा - (पृ० 287)

मोक्ष निरूपण :

संतों ने इस माया रूपी संसार से मुक्ति प्राप्त करने के अनेक उपाय बतायें हैं । वे कोई दार्शनिक न होने के कारण उनकी साखियों में दर्शन का स्पष्ट निरूपण कहीं कहीं नहीं है । जनता को सत्मार्ग पर लाने का प्रयास करने के कारण इनकी साखियों में मानवों को मुक्ति का पथप्रदर्शन भी किया गया है । इनकी साखियों में किसी एक दर्शन का अनुकरण नहीं किया गया है । विभिन्न दर्शनों के मुख्य तत्वों का समीकरण उनकी साखियों में मिलता है ।

न्याय दर्शन में मुक्ति के लिए "अपवर्ग" शब्द का प्रयोग किया गया है ।[1]

योग दर्शन में मोक्ष के लिए "कैवल्य" शब्द का प्रयोग किया गया है ।[2]

वेदान्त के अनुसार जब साधक अनुभव करता है कि - "अहं ब्रह्मास्मि" - मैं ही ब्रह्म हूँ । तब ब्रम्ह और जीव का भेदभाव मिट जाता है । भ्रम दूर भाग जाता है और साधक को मोक्ष प्राप्ति हो जाती है ।[3]

मोक्ष प्राप्त करने पर शरीर रहता है परन्तु वह उसके दुःखों से स्पृष्ट नहीं होता । इस अवस्था युक्त भक्त को "जीवनमुक्त" कहते हैं ।" इसका अर्थ है - इसी जीवन में, जीते जी, दुःखों से मुक्ति पा लेने वाला व्यक्ति ।[4]

पुष्टिमार्ग में जीव को मुक्ति का आनन्द प्राप्त होना भगवदिच्छाधीन माना गया है । पुष्टि जीव के लिए लीला में लय होने की स्थिति को वल्लभाचार्य ने "सामुज्य अनुरूपा मुक्ति" अवस्था कहा हैं । शुद्धाद्वैत में यही श्रेष्ठ मुक्ति मानी गई है । इसी को स्वरूपानंद की मुक्ति भी कहते है ।

---

(1) हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठ भूमि (पृ० 449)
(2) हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठ भूमि (पृ० 449)
(3) भारतीय दर्शन - पं० बलदेव उपाध्याय - (पृ० 478)
(4) भारतीय दर्शन - पं० बलदेव उपाध्याय - (पृ० 478)

गुजरात के भक्तों ने अपनी साखियों में जीवनमुक्ति और तज्जन्य आनन्दानुभूति का वर्णन किया है ।

जीवनमुक्त का बखान करते हुए प्रीतम कहते हैं जीवनमुक्त व्यक्ति अपनी देह की माया को त्याग देता है -

जीवनमुक्त रहे जकत मां, बरते देह व्यवहार । 7

एक अन्य साखी में प्रीतम कहते हैं जीवनमुक्त के मन में अहंकार कभी घर नहीं करता उसे अपने कर्म का फल तथा लाभ और हानि की भी कामना नहीं रहती ।

प्रीतम ने "अहंब्रह्मास्मि" के भाव को दर्शाते हुए लिखा हैं -

तीरथ पावन होत है, दरश परश दे दार,
कहे प्रीतम महामुक्त को, महिमा अगम अपार ।[1]

महामुक्त होने पर जीव और ब्रह्म में भेद नहीं रहता । अतः उस भक्त की "महिमा अगम अपार" हो जाती है ।

छोटय ने भी "अहंब्रह्मास्मि" के भाव को स्पष्ट करते हुए -

ब्रह्म अस्मि मन को कहे, तन को माने हंस
जग को बोधे दामहित, करे कर्म को ध्वंस ।[2] 19

वस्ता की साखियाँ भी ब्रह्म दर्शन के पश्चात् मोक्ष प्राप्ति के भावों को स्पष्ट करती है । वस्ता ने "पूरण भया सब काम" कह कर मोक्ष प्राप्ति को दर्शाया है । परमात्मा की उपासना करने पर मोक्ष सम्भव है ।

---

(1) प्रीतम वाणी (पृ0 98)

(2) छोटय नी साखियो - (पृ0 253)

96

पुरष्भुरी में वास है, परमात्मा है नाम,
ताको चरण उपासता पूरण माया सब काम ।[1] 20

देवा साहब ने भजन और भक्त को महत्व देते हुए ईश्वर के नाम स्मरण को मोक्ष प्राप्ति का प्रधान मार्ग कहा है । इसके द्वारा जीव फिर इस धरा में जन्म ग्रहण नहीं करता है ।

साखी ईह जो भाखी है। [सुने सुनावे ले जेह ।।
सो जननी के उदर में [। फिरी धरे नहीं देह ।।[2] 20

निरवान साहब"वहाँ की बात" में मोक्ष प्राप्ति का संदेश देते हैं उनके अनुसार इस क्षणिक जगत की बात उन्हें माया मोह और जंजाल लगती है । अत: कवि इन सबसे निजात पाने के लिए वह वहाँ की बातें सुनना चाहते है यहाँ की नहीं । अत: कवि मोक्ष की बात स्पष्ट करके कहते हैं कि यहाँ की बातें मत करो,
वहाँ की करो बखान, यहाँ की बात निखार को, लग रही विष समान ।[3] 21

इस प्रकार संतों की साखियों में जीवनमुक्त दशा या मोक्ष के महत्व का तथा उसकी प्राप्ति के उपायों का निरूपण विविध रूपों में उपलब्ध होता है ।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि साखिकारों ने दार्शनिक विचार धारा के प्रस्तुति के अन्तर्गत ब्रम्ह तत्व तथा उसके विभिन्न रूपों का निरूपण, जगतोत्पत्ति, जगत और ब्रम्ह का सम्बन्ध, जगत और संसार में अन्तर, जीव

---

[1] वस्ता नी साखियो - [अंग उपासना को] ह0लि0
[2] राम सागर - [पृ0 147]

निरूपण, जीव और ब्रम्ह के विभिन्न सम्बन्धों की चर्चा, माया निरूपण में माया का स्वरूप, मायानाश और उसके विभिन्न उपायों का आकलन किया है । इन सबके साथ-साथ मोक्ष प्राप्ति या जीवन मुक्त दशा के वर्णन निरूपण में उनकी रूचि का होना देखा जाता है ।

उपर्युक्त दार्शनिक विवेचन के पश्चात् अब हम आगामी अध्याय में साखिकारों द्वारा किए गए अध्यात्म निरूपण की समीक्षा करेंगे ।